अध्याय - ४९

परीक्षा

(१) हरि कानोबा (२) सोमदेव स्वामी (३) नानासाहेब चाँदोरकर की कथाएँ।

प्रस्तावना

जब वेद और पुराण ही ब्रह्म या सद्गुरु का वर्णन करने में अपनी असमर्थता प्रगट करते हैं, तब मैं एक अल्पज्ञ प्राणी अपने सद्गुरु श्री साईबाबा का वर्णन कैसे कर सकता हूँ? मेरा स्वयं का तो यह मत है कि इस विषय में मौन धारण करना ही अति उत्तम है। सच पूछा जाय तो मूक रहना ही सद्गुरु की विमल पताकारूपी विरुदावली का उत्तम प्रकार से वर्णन करना है। परन्तु उनमें जो उत्तम गुण हैं, वे हमें मूक कहाँ रहने देते हैं? यदि स्वादिष्ट भोजन बने और मित्र तथा सम्बन्धी आदि साथ बैठकर न खायें,तो वह नीरस-सा प्रतीत होता है और जब वही भोजन सब एक साथ बैठकर खाते हैं, तब उसमें एक विशेष प्रकार की सुस्वादुता आ जाती है। वैसी ही स्थिति साईलीलामृत के सम्बन्ध में भी है। इसका एकांत में रसास्वादन कभी नहीं हो सकता। यदि मित्र और पारिवारिक जन सभी मिलकर इसका रस लें तो और अधिक आनन्द आ जाता है। श्री साईबाबा स्वयं ही अंतःप्रेरणा कर अपनी इच्छानुसार ही इन कथाओं को मुझसे वर्णित करा रहे हैं। इसलिये हमारा तो केवल इतना ही कर्त्तव्य है कि अनन्यभाव से उनके शरणागत होकर उनका ही ध्यान करें। तप-साधन, तीर्थ यात्रा, व्रत एवं यज्ञ और दान से हरिभक्ति श्रेष्ठ है और सद्गुरु का ध्यान इन सबमें परम श्रेष्ठ है। इसलिये सदैव मुख से साईनाम का स्मरण कर उनके उपदेशों का निदिध्यासन एवं स्वरूप का चिन्तन कर हृदय में उनके प्रति सत्य और प्रेम के भाव से समस्त चेष्टाएँ उनके ही निमित्त करनी चाहिये। भवबन्धन से मुक्त होने का इससे उत्तम साधन और कोई नहीं। यदि हम उपर्युक्त विधि से कर्म करते जायें तो साई को विवश होकर हमारी सहायता कर हमें मुक्ति प्रदान करनी ही पड़ेगी। अब इस अध्याय की कथा श्रवण करें।

हरि कानोबा

बम्बई के हरि कानोबा नामक एक महानुभाव ने अपने कई मित्रों और संबन्धियों से साई बाबा की अनेक लीलाएँ सुनी थीं, परन्तु उन्हें विश्वास ही न होता था; क्योंकि वे संशयालु प्रकृति के व्यक्ति थे। अविश्वास उनके हृदयपटल पर अपना आसन जमाये हुये था। वे स्वयं बाबा की परीक्षा करने का निश्चय करके अपने कुछ मित्रों सहित बम्बई से शिरडी आये। उन्होंने सिर पर एक जरी की पगड़ी और पैरों में नये सैंडिल पहिन रखे थे। उन्होंने बाबा को दूर से ही देखकर उनके पास जाकर उन्हें प्रणाम तो करना चाहा, परन्तु उनके नये सैंडिल इस कार्य में बाधक बन गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब क्या किया जाय। तब उन्होंने अपने सैंडिल मंडप के एक सुरक्षित कोने में रखे और मसजिद में जाकर बाबा के दर्शन किये। उनका ध्यान सैंडिलों पर ही लगा रहा। उन्होंने बड़ी नम्रतापूर्वक बाबा को प्रणाम किया और उनसे प्रसाद और उदी प्राप्त कर लौट आये। पर जब उन्होंने कोने में दृष्टि डाली तो देखा कि सैंडिल तो अंतर्द्धान हो चुके हैं। पर्याप्त छानबीन भी व्यर्थ हुई और अन्त में निराश होकर वे अपने स्थान पर वापस आ गये।

स्नान, पूजन और नैवेद्य आदि अर्पित करके वे भोजन करने को तो बैठे, परन्तु वे पूरे समय तक उन सैंडिलों के चिन्तन में ही निमग्न रहे। भोजन कर मुँह-हाथ धोकर जब वे बाहर आये तो उन्होंने एक मराठा बालक को अपनी ओर आते देखा, जिसके हाथ में डण्डे के कोने पर एक नये सैंडिलों का जोड़ा लटका हुआ था। उस बालक ने हाथ धोने के लिए बाहर आने वाले लोगों से कहा कि बाबा ने मुझे यह डण्डा हाथ में देकर रास्तों में घूम-घूम कर "हरि का बेटा जरी का फेंटा" की पुकार लगाने को कहा है तथा जो कोई कहे कि सैंडिल हमारे हैं, उससे पहले यह पूछना कि क्या उसका नाम हरि और उसके पिता का 'क' (अर्थात् कानोबा) है? साथ ही यह भी देखना कि वह जरीदार साफा बाँधे हुए है या नहीं, तब इन्हें उसे दे देना। बालक का कथन सुनकर हरि कानोबा को बेहद आनन्द व आश्चर्य हुआ। उन्होंने आगे बढ़कर बालक से कहा कि ये हमारे ही सैंडिल हैं, मेरा ही नाम हरि और मैं ही 'क' (कानोबा) का पुत्र हूँ। यह मेरा जरी का साफा देखो। बालक सन्तुष्ट हो गया और सैंडिल उन्हें दे दी। उन्होंने सोचा कि मेरी जरीदार पगड़ी तो सब को ही दिख रही थी। हो सकता है कि बाबा की भी दृष्टि में आ गई हो। परन्तु यह मेरी शिरडी-यात्रा का प्रथम अवसर है, फिर बाबा को यह कैसे विदित हो गया कि मेरा ही नाम हरि है और मेरे पिता का कानोबा? वह

तो केवल बाबा की परीक्षार्थ वहाँ आया था। उसे इस घटना से बाबा की महानता विदित हो गई। उसकी इच्छा पूर्ण हो गई और वह सहर्ष घर लौट गया।

सोमदेव स्वामी

अब एक दूसरे संशयालु व्यक्ति की कथा सुनिये, जो बाबा की परीक्षा करने आया था। काकासाहेब दीक्षित के भ्राता श्री. भाईजी नागपुर में रहते थे। जब वे सन् १९०६ में हिमालय गये थे, तब उनका गंगोत्री घाटी के नीचे हरिद्वार के समीप उत्तर काशी में एक सोमदेव स्वामी से परिचय हो गया। दोनों ने एक दूसरे के पते लिख लिये। पाँच वर्ष पश्चात् सोमदेव स्वामी नागपुर में आये और भाईजी के यहाँ ठहरे। वहाँ श्री साईबाबा की कीर्ति सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई तथा शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने की तीव्र उत्कंठा हुई। मनमाड और कोपरगाँव निकल जाने पर वे एक ताँगे में बैठकर शिरडी को चल पड़े। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्होंने दूर से ही मसजिद पर दो ध्वज लहराते देखे। सामान्यतः देखने में आता है कि भिन्न-भिन्न सन्तों का बर्त्ताव, रहन-सहन और बाह्य सामग्रियाँ प्रायः भिन्न प्रकार की ही रहा करती हैं। परन्तु केवल इन वस्तुओं से ही सन्तों की योग्यता का आकलन कर लेना बड़ी भूल है। सोमदेव स्वामी कुछ भिन्न प्रकृति के थे। उन्होंने जैसे ही ध्वजों को लहराते देखा तो वे सोचने लगे कि बाबा सन्त होकर इन ध्वजों में इतनी दिलचस्पी क्यों रखते हैं? क्या इससे उनका सन्तपन प्रकट होता है? ऐसा प्रतीत होता है कि यह सन्त अपनी कीर्ति का इच्छुक है। अतएव उन्होंने शिरडी जाने का विचार त्याग कर अपने सहयात्रियों से कहा कि मैं तो वापस लौटना चाहता हूँ। तब वे लोग कहने लगे कि फिर व्यर्थ ही इतनी दूर क्यों आये? अभी केवल ध्वजों को देखकर तुम इतने उद्विग्न हो उठे हो तो जब शिरडी में रथ, पालकी, घोड़ा और अन्य सामग्रियाँ देखोगे, तब तुम्हारी क्या दशा होगी? स्वामी को अब और भी अधिक घबराहट होने लगी और उसने कहा कि मैंने अनेक साधु-सन्तों के दर्शन किये हैं, परन्तु यह सन्त कोई विरला ही है, जो इस प्रकार ऐश्वर्य की वस्तुएँ संग्रह कर रहा है। ऐसे साधु के दर्शन न करना ही उत्तम है, ऐसा कहकर वे वापस लौटने लगे। तीर्थयात्रियों ने प्रतिरोध करते हुए उन्हें आगे बढ़ने की सलाह दी और समझाया कि तुम यह संकुचित मनोवृत्ति छोड़ दो। मसजिद में जो साधु हैं, वे इन ध्वजाओं और अन्य सामग्रियों या अपनी कीर्ति का स्वप्न में भी सोचविचार नहीं करते। ये सब तो उनके भक्तगण प्रेम और भक्ति के कारण ही उनको भेंट किया करते हैं। अन्त में वे शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने को तैयार हो गये। मसजिद के मंडप में पहुँच कर तो वे द्रवित हो गये। उनकी

आँखों से अश्रुधारा बहने लगी और कंठ रुँध गया। अब उनके सब दूषित विचार हवा हो गये और उन्हें अपने गुरु के शब्दों की स्मृति हो आई कि **"मन जहाँ अति प्रसन्न और आकर्षित हो जाय, उसी स्थान को ही अपना विश्रामधाम समझना।"** वे बाबा की चरण-रज में लोटना चाहते थे, परन्तु जब वे उनके समीप गये तो बाबा एकदम क्रोधित होकर जोर-जोर से चिल्लाकर कहने लगे कि "हमारा सामान हमारे ही साथ रहने दो, तुम अपने घर वापस लौट जाओ। सावधान! यदि फिर कभी मसजिद की सीढ़ी चढ़े तो। ऐसे संत के दर्शन ही क्यों करना चाहिये, जो मसजिद पर ध्वजायें लगाकर रखे? क्या ये सन्तपन के लक्षण हैं? एक क्षण भी यहाँ न रुको।" अब उसे अनुभव हो गया कि बाबा ने अपने हृदय की बात जान ली है और वे कितने सर्वज्ञ हैं! उसे अपनी योग्यता पर हँसी आने लगी तथा उसे पता चल गया कि बाबा कितने निर्विकार और पवित्र हैं। उसने देखा कि वे किसी को हृदय से लगाते और किसी को हाथ से स्पर्श करते हैं तथा किसी को सान्त्वना देकर प्रेमदृष्टि से निहारते हैं। किसी को उदी प्रसाद देकर सभी प्रकार से भक्तों को सुख और सन्तोष पहुँचा रहे हैं तो फिर मेरे साथ ऐसा रुक्ष बर्त्ताव क्यों? अधिक विचार करने पर वे इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि इसका कारण मेरे आन्तरिक विचार ही थे और इससे शिक्षा ग्रहण कर मुझे अपना आचरण सुधारना चाहिये। बाबा का क्रोध तो मेरे लिये वरदानस्वरूप है। अब यह कहना व्यर्थ ही होगा कि वे बाबा की शरण में आ गये और उनके एक परम भक्त बन गये।

नानासाहेब चाँदोरकर

अन्त में नानासाहेब चाँदोरकर की कथा लिखकर हेमाडपंत ने यह अध्याय समाप्त किया है। एक समय जब नानासाहेब, म्हालसापति और अन्य लोगों के साथ मसजिद में बैठे हुए थे तो बीजापुर से एक सम्भ्रान्त यवन परिवार श्री साईबाबा के दर्शनार्थ आया। कुलवन्तियों की लाजरक्षण भावना देखकर नानासाहेब वहाँ से निकल जाना चाहते थे, परन्तु बाबा ने उन्हें रोक लिया। स्त्रियाँ आगे बढ़ीं और उन्होंने बाबा के दर्शन किये। उनमें से एक महिला ने अपने मुँह पर से घूँघट हटाकर बाबा के चरणों में प्रणाम कर फिर घूँघट डाल लिया। नानासाहेब उसके सौंदर्य से आकर्षित हो गये और एक बार पुनः वह छटा देखने को लालायित हो उठे। नाना के मन की व्यथा जानकर उन लोगों के चले जाने के पश्चात् बाबा उनसे कहने लगे कि "नाना, क्यों व्यर्थ में मोहित हो रहे हो? इन्द्रियों को अपना कार्य करने दो। हमें उनके कार्य में बाधक न होना चाहिये। भगवान् ने यह सुन्दर सृष्टि निर्माण की है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम उसके सौन्दर्य की सराहना करें। यह मन तो क्रमशः ही स्थिर होता है और जब सामने का द्वार खुला

है, तब हमें पिछले द्वार से क्यों प्रविष्ट होना चाहिये? चित्त शुद्ध होते ही फिर किसी कष्ट का अनुभव नहीं होता। यदि हमारे मन में कुविचार नहीं हैं तो हमें किसी से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं। नेत्रों को अपना कार्य करने दो। इसके लिये तुम्हें लज्जित तथा विचलित न होना चाहिये।'' उस समय शामा भी वहीं थे। उनकी समझ में न आया कि आखिर बाबा के कहने का तात्पर्य क्या है? इसलिये लौटते समय इस विषय में उन्होंने नाना से पूछा। उस परम सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर जिस प्रकार वे मोहित हुए तथा यह व्यथा जानकर बाबा ने इस विषय पर जो उपदेश उन्हें दिये, उन्होंने उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त उनसे कहकर शामा को इस प्रकार समझाया - ''हमारा मन स्वभावतः ही चंचल है, पर हमें उसे लम्पट न होने देना चाहिये। इन्द्रियाँ चाहे भले ही चंचल हो जायें, परन्तु हमें अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण रखकर उसे अशांत न होने देना चाहिये। इन्द्रियाँ तो अपने विषयपदार्थों के लिये सदैव चेष्टा किया ही करती हैं, पर हमें उनके वशीभूत होकर उनके इच्छित पदार्थों के समीप न जाना चाहिये। क्रमशः प्रयत्न करते रहने से इस चंचलता को नियंत्रित किया जा सकता है। यद्यपि उन पर पूर्ण नियंत्रण सम्भव नहीं है तो भी हमें उनके वशीभूत न होना चाहिये। प्रसंगानुसार हमें उनका वास्तविक रूप से उचित गति-अवरोध करना चाहिये। सौन्दर्य तो आँखें सेंकने का विषय है, इसलिये हमें निडर होकर सुन्दर पदार्थों की ओर देखना चाहिये। यदि हममें किसी प्रकार के कुविचार न आवें तो इसमें लज्जा और भय की आवश्यकता ही क्या है। यदि मन को निरिच्छ बनाकर ईश्वर के सौन्दर्य को निहारो तो इन्द्रियाँ सहज और स्वाभाविक रूप से अपने वश में आ जायेंगी और विषयानन्द लेते समय भी तुम्हें ईश्वर की स्मृति बनी रहेगी। यदि उसे बाह्य इन्द्रियों के पीछे दौड़ने तथा उनमें लिप्त रहने दोगे तो तुम्हारा जन्म-मृत्यु के पाश से कदापि छुटकारा न होगा। विषयपदार्थ इंद्रियों को सदा पथभ्रष्ट करने वाले होते हैं। अतएव हमें विवेक को सारथी बनाकर मन की लगाम अपने हाथ में लेकर इन्द्रिय रूपी घोड़ों को विषयपदार्थों की ओर जाने से रोक लेना चाहिये। ऐसा विवेक रूपी सारथी हमें विष्णु-पद की प्राप्ति करा देगा, जो हमारा यथार्थ में परम सत्य धाम है और जहाँ गया हुआ प्राणी फिर कभी यहाँ नहीं लौटता।''

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय - ५०

(१) काकासाहेब दीक्षित, (२) श्री. टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ।

मूल सच्चरित्र के अध्याय ३९ और ५० को हमने एक साथ सम्मिलित कर लिखा है, क्योंकि इन दोनों अध्यायों का विषय प्रायः एक-सा ही है। अब सच्चरित्र का अध्याय ५१ यहाँ ५० वें अध्याय के रूप में लिखा जा रहा है। इस अध्याय में (१) काकासाहेब दीक्षित, (२) टेंबे स्वामी और (३) बालाराम धुरन्धर की कथाएँ हैं।

प्रस्तावना

उन श्रीसाई महाराज की जय हो, जो भक्तों के जीवनाधार एवं सद्गुरु हैं। वे गीताधर्म का उपदेश देकर हमें शक्ति प्रदान कर रहे हैं। हे साई, कृपादृष्टि से देखकर हमें आशीष दो। जैसे मलयगिरि में होनेवाला चन्दनवृक्ष समस्त तापों का हरण कर लेता है अथवा जिस प्रकार बादल जलवृष्टि कर लोगों को शीतलता और आनन्द पहुँचाते हैं या जैसे वसन्त में खिले फूल ईश्वरपूजन के काम आते हैं, इसी प्रकार श्री साईबाबा की कथाएँ पाठकों तथा श्रोताओं को धैर्य एवं सान्त्वना देती हैं। जो कथा कहते या श्रवण करते हैं, वे दोनों ही धन्य हैं, क्योंकि उनके कहने से मुख तथा श्रवण से कान पवित्र हो जाते हैं।

यह तो सर्वमान्य है कि चाहे हम सैकड़ों प्रकार की साधनाएँ क्यों न करें, जब तक सद्गुरु की कृपा नहीं होती, तब तक हमें अपने आध्यात्मिक ध्येय की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी विषय में यह निम्नलिखित कथा सुनिये:-

काकासाहेब दीक्षित (१८६४-१९२६)

श्री हरि सीताराम उपनाम काकासाहेब दीक्षित सन् १८६४ में वड़नगर के नागर

ब्राह्मण कुल में खण्डवा में पैदा हुए थे। उनकी प्राथमिक शिक्षा खण्डवा और हिंगणघाट में हुई। माध्यमिक शिक्षा नागपुर में उच्च श्रेणी में प्राप्त करने के बाद उन्होंने पहले विल्सन तथा बाद में एल्‌फिन्स्टन कॉलेज मे अध्ययन किया। सन् १८८३ में उन्होंने ग्रेज्युएट की डिग्री लेकर कानूनी (LL.B.) और कानूनी सलाहकार (Solicitor) की परीक्षाएँ पास कीं और फिर वे सरकारी सॉलिसिटर फर्म-मेसर्स लिटिल एण्ड कम्पनी में कार्य करने लगे। इसके पश्चात् उन्होंने स्वतः की एक सॉलिसिटर फर्म चालू कर दी।

सन् १९०९ के पहले तो बाबा की कीर्त्ति उनके कानों तक नहीं पहुँची थी, परन्तु इसके पश्चात् वे शीघ्र ही बाबा के परम भक्त बन गये। जब वे लोनावला में निवास कर रहे थे तो उनकी अचानक भेंट अपने पुराने मित्र नानासाहेब चाँदोरकर से हुई। दोनों ही इधर-उधर की चर्चाओं में समय बिताते थे। काकासाहेब ने उन्हें बताया कि जब वे लन्दन में थे तो रेलगाड़ी पर चढ़ते समय कैसे उनका पैर फिसला तथा कैसे उसमें चोट आई, इसका पूर्ण विवरण सुनाया। काकासाहेब ने आगे कहा कि मैंने सैकड़ों उपचार किये, परन्तु कोई लाभ न हुआ। नानासाहेब ने उनसे कहा कि यदि तुम इस लँगड़ेपन तथा कष्ट से मुक्त होना चाहते हो तो मेरे सद्‌गुरु श्री साईबाबा की शरण में जाओ। उन्होंने बाबा का पूरा पता बताकर उनके कथन को दुहराया कि **"मैं अपने भक्त को सात समुद्रों के पार से भी उसी प्रकार खींच लूँगा, जिस प्रकार कि एक चिड़िया को जिसका पैर रस्सी से बँधा हो, खींच कर अपने पास लाया जाता है।"** उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि तुम बाबा के निजी जन न होगे तो तुम्हें उनके प्रति आकर्षण भी न होगा और न ही उनके दर्शन प्राप्त होंगे। काकासाहेब को ये बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा, वे शिरडी जाकर बाबा से प्रार्थना करेंगे कि शारीरिक लँगड़ेपन के बदले उनके चंचल मन को अपंग बनाकर परमानन्द की प्राप्ति करा दें।

कुछ दिनों के पश्चात् ही बम्बई विधान सभा (Legislative Assembly) के चुनाव में मत प्राप्त करने के सम्बन्ध में काकासाहेब दीक्षित अहमदनगर गये और सरदार काकासाहेब मिरीकर के यहाँ ठहरे। श्री. बालासाहेब मिरीकर जो कि कोपरगाँव के मामलतदार तथा काकासाहेब मिरीकर के सुपुत्र थे, वे भी इसी समय अश्वप्रदर्शनी देखने के हेतु अहमदनगर पधारे थे। चुनाव का कार्य समाप्त होने के पश्चात् काकासाहेब दीक्षित शिरडी जाना चाहते थे। यहाँ पिता और पुत्र दोनों ही घर में विचार कर रहे थे कि काकासाहेब के साथ भेजने के लिये कौन सा व्यक्ति उपयुक्त होगा और दूसरी ओर

बाबा अलग ही ढंग से उन्हें अपने पास बुलाने का प्रबन्ध कर रहे थे। शामा के पास एक तार आया कि उनकी सास की हालत अधिक शोचनीय है और उन्हें देखने को वे शीघ्र ही अहमदनगर को आयें। बाबा से अनुमति प्राप्त कर शामा ने वहाँ जाकर अपनी सास को देखा, जिनकी स्थिति में अब पर्याप्त सुधार हो चुका था। प्रदर्शनी को जाते समय नानासाहेब पानसे तथा अप्पासाहेब गद्रे की दृष्टि अचानक शामा पर पड़ी। उन्होंने शामा से मिरीकर के घर जाकर काकासाहेब दीक्षित से भेंट करने तथा उन्हें अपने साथ शिरडी ले जाने को कहा। उन्होंने शामा के आगमन की सूचना काकासाहेब दीक्षित और मिरीकर को भी दे दी। सन्ध्या समय शामा मिरीकर के घर आये। मिरीकर ने शामा का काकासाहेब दीक्षित से परिचय करा दिया और फिर ऐसा निश्चित हुआ कि काकासाहेब दीक्षित उनके साथ रात १० बजेवाली गाड़ी से कोपरगाँव को रवाना हो जावें। इस निश्चय के बाद ही एक विचित्र घटना घटी। बालासाहेब मिरीकर ने बाबा के एक बड़े चित्र पर से परदा हटाकर काकासाहेब दीक्षित को उनके दर्शन कराये तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिनके दर्शनार्थ मैं शिरडी जाने वाला हूँ, वे ही इस चित्र के रूप में मेरे स्वागत हेतु यहाँ विराजमान हैं। तब अत्यन्त द्रवित होकर वे बाबा की वन्दना करने लगे। यह चित्र मेघा का था और काँच लगाने के लिये मिरीकर के पास आया था। दूसरा काँच लगवा कर उसे काकासाहेब दीक्षित तथा शामा के हाथ वापस शिरडी भेजने का प्रबन्ध किया गया। दस बजे से पहले ही स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने द्वितीय श्रेणी का टिकट ले लिया। जब गाड़ी स्टेशनपर आई तो द्वितीय श्रेणी का डिब्बा खचाखच भरा हुआ था। उसमें बैठने को तिलमात्र भी स्थान न था। भाग्यवश गार्डसाहेब काकासाहेब दीक्षित की पहिचान के निकल आये और उन्होंने इन दोनों को प्रथम श्रेणी के डिब्बे में बैठा दिया। इस प्रकार सुविधापूर्वक यात्रा करते हुए वे कोपरगाँव स्टेशन पर उतरे। स्टेशन पर ही शिरडी को जानेवाले नानासाहेब चाँदोरकर को देखकर उनके हर्ष का पारावार न रहा। शिरडी पहुँचकर उन्होंने मसजिद में जाकर बाबा के दर्शन किये। तब बाबा कहने लगे कि "मैं बड़ी देर से तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था। शामा को मैंने ही तुम्हें लाने के लिए भेज दिया था।" इसके पश्चात् काकासाहेब ने अनेक वर्ष बाबा की संगति में व्यतीत किये। उन्होंने शिरडी में एक वाड़ा (दीक्षित वाड़ा) बनवाया, जो उनका प्रायः स्थायी घर हो गया। उन्हें बाबा से जो अनुभव प्राप्त हुए, वे सब स्थानाभाव के कारण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। पाठकों से प्रार्थना है कि वे श्री साईलीला पत्रिका के विशेषांक (काकासाहेब दीक्षित) भाग १२ के अंक ६-९ तक देखें। उनके केवल एक दो अनुभव लिखकर हम यह कथा समाप्त करेंगे। बाबा ने उन्हें आश्वासन

दिया था कि अन्त समय आने पर बाबा उन्हें विमान में ले जायेंगे; जो सत्य निकला। तारीख ५ जुलाई, सन् १९२६ को वे हेमाडपंत के साथ रेल से यात्रा कर रहे थे। दोनों में साईबाबा के विषय में बातें हो रही थीं। वे श्री साईबाबा के ध्यान में अधिक तल्लीन हो गये, तभी अचानक उनकी गर्दन हेमाडपंत के कन्धे से जा लगी और उन्होंने बिना किसी कष्ट तथा घबराहट के अपनी अंतिम श्वास छोड़ दी।

श्री. टेंबे स्वामी

अब हम द्वितीय कथा पर आते हैं; जिससे स्पष्ट होता है कि सन्त परस्पर एक दूसरे को किस प्रकार भ्रातृवत् प्रेम किया करते हैं। एक बार श्री वासुदेवानन्द सरस्वती, जो श्री. टेंबे स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं, ने गोदावरी के तीर पर राजमहेन्द्री में आकर डेरा डाला। वे भगवान् दत्तात्रेय के कर्मकांडी, ज्ञानी तथा योगी भक्त थे। नाँदेड़ (निजाम स्टेट) के एक वकील अपने मित्रों के सहित उनसे भेंट करने आये और वार्त्तालाप करते-करते श्री साईबाबा की चर्चा भी निकल पड़ी। बाबा का नाम सुनकर स्वामीजी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया और पुंडलीकराव (वकील) को एक श्रीफल देकर उन्होंने कहा कि तुम जाकर मेरे भ्राता श्री साई को प्रणाम कर कहना कि मुझे न बिसरें तथा सदैव मुझ पर कृपा दृष्टि रखें। उन्होंने यह भी बतलाया कि सामान्यतः एक स्वामी दूसरे को प्रणाम नहीं करता, परन्तु यहाँ विशेष रूप से ऐसा किया गया है। श्री पुंडलीकराव ने श्रीफल लेकर कहा कि "मैं इसे बाबा को दे दूँगा तथा आपका सन्देश भी कह दूँगा।" स्वामी ने बाबा को जो 'भाई' शब्द से सम्बोधित किया था, वह बिलकुल ही उचित था। उधर स्वामी जी अपनी कर्मकांडी पद्धति के अनुसार दिनरात अग्निहोत्र प्रज्वलित रखते थे और इधर बाबा की धूनी दिनरात मसजिद में जलती रहती थी।

एक मास के पश्चात् ही पुंडलीकराव अन्य मित्रों सहित श्रीफल लेकर शिरडी को रवाना हुए। जब वे मनमाड पहुँचे तो प्यास लगने के कारण एक नाले पर पानी पीने गये। खाली पेट पानी न पीना चाहिये, यह सोचकर उन्होंने कुछ चिवड़ा खाने को निकाला, जो खाने में कुछ अधिक तीखा-सा प्रतीत हुआ। उसका तीखापन कम करने के लिये किसी ने नारियल फोड़ कर उसमें खोपरा मिला दिया और इस तरह उन लोगों ने चिवड़ा स्वादिष्ट बनाकर खाया। अभाग्यवश जो नारियल उनके हाथ से फूटा, वह वही था, जो स्वामीजी ने पुंडलीकराव को भेंट में देने को दिया था। शिरडी के समीप पहुँचने पर उन्हें नारियल की स्मृति हो आई। उन्हें यह जानकर बड़ा ही दुःख हुआ कि भेंट स्वरूप दिये जाने वाला नारियल ही फोड़ दिया गया है। डरते-डरते और काँपते

हुए वे शिरडी पहुँचे और वहाँ जाकर उन्होंने बाबा के दर्शन किये। बाबा को तो यहाँ नारियल के सम्बन्ध में स्वामी से बेतार का तार प्राप्त हो चुका था। इसीलिये उन्होंने पहले से ही पुंडलीकराव से प्रश्न किया कि "मेरे भाई की भेजी हुई वस्तु लाओ।" उन्होंने बाबा के चरण पकड़ कर अपना अपराध स्वीकार करते हुये अपनी चूक के लिये उनसे क्षमा याचना की। वे उसके बदले में दूसरा नारियल देने को तैयार थे, परन्तु बाबा ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया कि "उस नारियल का मूल्य इस नारियल से कई गुना अधिक था और उसकी पूर्त्ति इस साधारण नारियल से नहीं हो सकती।" फिर वे बोले कि "अब तुम कुछ चिन्ता न करो। मेरी ही इच्छा से वह नारियल तुम्हें दिया गया तथा मार्ग में फोड़ा गया है। तुम स्वयं में कर्त्तापन की भावना क्यों लाते हो?[1] कोई भी श्रेष्ठ या कनिष्ठ कर्म करते समय अपने को कर्त्ता न जानकर अभिमान तथा अहंकार से परे होकर ही कार्य करो, तभी तुम्हारी द्रुत गति से प्रगति होगी।[2] कितना सुन्दर उनका यह आध्यात्मिक उपदेश था।

श्री बालाराम धुरन्धर (१८७८-१९२५)

सान्ताक्रुज, बम्बई के श्री. बालाराम धुरन्धर प्रभु जाति के एक सज्जन थे। वे बम्बई के उच्च न्यायालय में एडवोकेट थे तथा किसी समय शासकीय विधि विद्यालय (Govt. Law School) बम्बई के प्राचार्य (Principal) भी थे। उनका सम्पूर्ण कुटुम्ब सात्विक तथा धार्मिक था। श्री. बालाराम ने अपनी जाति की योग्य सेवा की और इस सम्बन्ध में एक पुस्तक भी प्रकाशित कराई। इसके पश्चात् उनका ध्यान आध्यात्मिक और धार्मिक विषयों पर गया। उन्होंने ध्यानपूर्वक गीता, उसकी टीका ज्ञानेश्वरी तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों का अध्ययन किया। वे पंढरपुर के भगवान विठोबा के परम भक्त थे। सन् १९१२ में उन्हें श्री साईबाबा के दर्शनों का लाभ हुआ। छः मास पूर्व उनके भाई बाबुलजी और वामनराव ने शिरडी आकर बाबा के दर्शन किये थे और उन्होंने घर लौटकर अपने मधुर अनुभव भी श्री. बालाराम व परिवार के अन्य लोगों को सुनाये। तब सब लोगों ने शिरडी जाकर बाबा के दर्शन करने का निश्चय किया। यहाँ शिरडी में उनके पहुँचने के पूर्व ही बाबा ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "आज मेरे बहुत से

---

१. *प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥ - गीता - ३।२७॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥ गीता ३॥१९॥

दरबारीगण आ रहे हैं।" अन्य लोगों द्वारा बाबा के उपरोक्त वचन सुनकर धुरन्धर परिवार को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में किसी को भी इसकी पहले से सूचना न दी थी। सभी ने आकर उन्हें प्रणाम किया और बैठकर वार्त्तालाप करने लगे। बाबा ने अन्य लोगों को बतलाया कि "ये मेरे दरबारीगण हैं, जिनके सम्बन्ध में मैंने तुमसे पहले कहा था।" फिर धुरन्धर भ्राताओं से बोले कि "मेरा और तुम्हारा परिचय ६० जन्म पुराना है।" सभी नम्र और सभ्य थे, इसलिये वे सब हाथ जोड़े हुए बैठे-बैठे बाबा की ओर निहारते रहे। उनमें सब प्रकार के सात्विक भाव जैसे अश्रुपात, रोमांच तथा कण्ठावरोध आदि जागृत होने लगे और सबको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके पश्चात् वे सब अपने निवासस्थान पर भोजन को गये और भोजन तथा थोड़ा विश्राम लेकर पुनः मसजिद में आकर बाबा के पाँव दबाने लगे। इस समय बाबा चिलम पी रहे थे। उन्होंने बालाराम को भी चिलम देकर एक फूँक लगाने का आग्रह किया। यद्यपि अभी तक उन्होंने कभी धूम्रपान नहीं किया था, फिर भी चिलम हाथ में लेकर बड़ी कठिनाई से उन्होंने एक फूँक लगाई और आदरपूर्वक बाबा को लौटा दी। बालाराम के लिये तो यह अनमोल घड़ी थी। वे ६ वर्षों से श्वास-रोग से पीड़ित थे, पर चिलम पीते ही वे रोगमुक्त हो गये। उन्हें फिर कभी यह कष्ट न हुआ। ६ वर्षों के पश्चात् उन्हें एक दिन पुनः श्वास रोग का दौरा आया। यह वही महापुण्यशाली दिन था, जब कि बाबा ने महासमाधि ली। वे गुरुवार के दिन शिरडी आये थे। भाग्यवश उसी रात्रि को उन्हें चावड़ी उत्सव देखने का अवसर मिल गया। आरती के समय बालाराम को चावड़ी में बाबा का मुखमंडल भगवान् पांडुरंग सरीखा दिखाई पड़ा। दूसरे दिन कांकड़ आरती के समय उन्हें बाबा के मुखमंडल की प्रभा अपने परम इष्ट भगवान् पांडुरंग के सदृश ही पुनः दिखाई दी।

श्री बालाराम धुरन्धर ने मराठी में महाराष्ट्र के महान् सन्त तुकाराम का जीवनचरित्र लिखा है, परन्तु खेद है कि पुस्तक प्रकाशित होने तक वे जीवित न रह सके। उनके बन्धुओं ने इस पुस्तक को सन् १९२८ में प्रकाशित कराया। इस पुस्तक के प्रारम्भ में पृष्ठ ६ पर उनकी जीवनी से सम्बन्धित एक परिक्षेपक में उनकी शिरडी यात्रा का पूरा वर्णन है।

॥ श्री सद्‌गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

अध्याय ५१

उपसंहार

अध्याय - ५१ पूर्ण हो चुका है और अब अन्तिम अध्याय (मूल ग्रन्थ का ५२ वाँ अध्याय) लिखा जा रहा है। इसमें हेमाडपंत ने अन्तिम समालोचना की है और उसी प्रकार सूची लिखने का वचन दिया है, जिस प्रकार कि अन्य मराठी धार्मिक काव्यग्रन्थों में विषय की सूची अन्त में लिखी जाती है। अभाग्यवश हेमाडपंत के कागजपत्रों की छानबीन करने पर भी वह सूची प्राप्त न हो सकी। तब बाबा के एक योग्य तथा धार्मिक भक्त ठाणे के अवकाशप्राप्त मामलतदार श्री. बी.व्ही. देव ने उसे रचकर प्रस्तुत किया। पुस्तक के प्रारम्भ में ही विषयसूची देने तथा प्रत्येक अध्याय में विषय का संकेत शीर्षक स्वरूप लिखना ही आधुनिक प्रथा है, इसलिये यहाँ अनुक्रमणिका नहीं दी जा रही है। अतः इस अध्याय को उपसंहार समझना ही उपयुक्त होगा। अभाग्यवश हेमाडपंत उस समय तक जीवित न रहे कि वे अपने लिखे हुए इस अध्याय की प्रति में संशोधन करके उसे छपने योग्य बनाते।

श्री सद्‌गुरु साई की महानता

"हे साई, मैं आपकी चरण वन्दना कर आपसे 'शरण' की याचना करता हूँ, क्योंकि आप ही इस अखिल विश्व के एकमात्र आधार हैं।" यदि ऐसी ही धारणा लेकर हम उनका भजन-पूजन करें तो यह निश्चित है कि हमारी समस्त इच्छायें शीघ्र पूर्ण होंगी और हमें अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जायेगी। आज निन्दित विचारों के तट पर माया-मोह के झंझावात से धैर्य रूपी वृक्ष की जड़ें उखड़ गई हैं। अहंकार रूपी वायु की प्रबलता से हृदय रूपी समुद्र में तूफान उठ खड़ा हुआ है, जिसमें क्रोध और घृणा रूपी घड़ियाल तैरते हैं और अहंभाव एवं सन्देह रूपी नाना संकल्प-विकल्पों की संतत भँवरों में निन्दा, घृणा और ईर्ष्यारूपी अगणित मछलियाँ विहार कर रही हैं। यद्यपि यह समुद्र इतना भयानक है तो भी हमारे सद्‌गुरु साई महाराज उसमें अगस्त्य स्वरूप ही हैं। इसलिये

भक्तों को किंचित्मात्र भी भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। हमारे सद्गुरु तो जहाज हैं और वे हमें कुशलतापूर्वक इस भयानक भव-समुद्र से पार उतार देंगे।

प्रार्थना

श्री सच्चिदानंद साई महाराज को साष्टांग नमस्कार करके उनके चरण पकड़ कर हम सब भक्तों के कल्याणार्थ उनसे प्रार्थना करते हैं कि "हे साई! हमारे मन की चंचलता और वासनाओं को दूर करो। हे प्रभु! तुम्हारे श्रीचरणों के अतिरिक्त हममें किसी अन्य वस्तु की लालसा न रहे। तुम्हारा यह चरित्र घर-घर पहुँचे और इसका नित्य पठन-पाठन हो और जो भक्त इसका प्रेमपूर्वक अध्ययन करें, उनके समस्त संकट दूर हों।

फलश्रुति (अध्ययन का पुरस्कार)

अब इस पुस्तक के अध्ययन से प्राप्त होने वाले फल के सम्बन्ध में कुछ शब्द लिखूँगा। इस ग्रन्थ के पठन-पाठन से मनोवांछित फल की प्राप्ति होगी। पवित्र गोदावरी नदी में स्नान कर, शिरडी के समाधि मन्दिर में श्री साईबाबा की समाधि के दर्शन कर लेने के पश्चात् इस ग्रन्थ का पठन-पाठन या श्रवण प्रारम्भ करोगे तो तुम्हारी तिगुनी आपत्तियाँ भी दूर हो जायेंगी। समय-समय पर श्री साईबाबा की कथा-वार्त्ता करते रहने से तुम्हें आध्यात्मिक जगत् के प्रति अज्ञात रूप से अभिरुचि हो जायेगी और यदि तुम इस प्रकार नियम तथा प्रेमपूर्वक अभ्यास करते रहे तो तुम्हारे समस्त पाप अवश्य नष्ट हो जायेंगे। **यदि सचमुच ही तुम आवागमन से मुक्ति चाहते हो तो तुम्हें साई कथाओं का नित्य पठन-पाठन, स्मरण और उनके चरणों में प्रगाढ़ प्रीति रखनी चाहिये।**[१] **साई कथारूपी समुद्र का मंथन कर उसमें से प्राप्त रत्नों का दूसरों को वितरण करो,** जिससे तुम्हें नित्य नूतन आनन्द का अनुभव होगा और श्रोतागण अधःपतन से बच जायेंगे। यदि भक्तगण अनन्य भाव से उनकी शरण आयें तो उनका ममत्व नष्ट होकर बाबा से अभिन्नता प्राप्त हो जायेगी, जैसे कि नदी समुद्र में मिल जाती है। यदि तुम तीन अवस्थाओं (अर्थात्-जागृति, स्वप्न और निद्रा) में से किसी एक में भी साई-चिन्तन में लीन हो जाओ तो तुम्हारा सांसारिक चक्र से छुटकारा हो जायेगा। **स्नान कर प्रेम और श्रद्धायुक्त होकर जो इस ग्रन्थ का एक सप्ताह में पठन समाप्त करेंगे, उनके सारे कष्ट दूर हो जायेंगे[२] या जो इसका नित्य पठन या श्रवण**

१. महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्॥ गीता ९॥१३॥

२. सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्य युक्ताउपासते॥ गीता ९॥१४॥

करेंगे, उन्हें सब भयों से तुरन्त छुटकारा मिल जायेगा। इसके अध्ययन से हर एक को अपनी श्रद्धा और भक्ति के अनुसार फल मिलेगा। परन्तु इन दोनों के अभाव में किसी भी फल की प्राप्ति होना संभव नहीं है। यदि तुम इस ग्रन्थ का आदरपूर्वक पठन करोगे तो श्री साई प्रसन्न होकर तुम्हें अज्ञान और दरिद्रता के पाश से मुक्त कर, ज्ञान, धन और समृद्धि प्रदान करेंगे। यदि एकाग्रचित्त होकर नित्य एक अध्याय ही पढ़ोगे तो तुम्हें अपरिमित सुख की प्राप्ति होगी। इस ग्रन्थ को अपने घर पर गुरु-पूर्णिमा, गोकुल अष्टमी, रामनवमी, विजयादशमी और दीपावली के दिन अवश्य पढ़ना चाहिये। यदि ध्यानपूर्वक तुम केवल इसी ग्रन्थ का अध्ययन करते रहोगे तो तुम्हें सुख और सन्तोष प्राप्त होगा और सदैव श्री साई चरणारविंदों का स्मरण बना रहेगा और इस प्रकार तुम भवसागर से सहज ही पार हो जाओगे। इसके अध्ययन से रोगियों को स्वास्थ्य, निर्धनों को धन, दुःखित और पीड़ितों को संपन्नता मिलेगी तथा मन के समस्त विकार दूर होकर मानसिक शान्ति प्राप्त होगी।

मेरे प्रिय भक्त और श्रोतागण! आपको प्रणाम करते हुए मेरा आपसे एक विशेष निवेदन है कि जिनकी कथा आपने इतने दिनों और महीनों से सुनी है, उनके कलिमलहारी और मनोहर चरणों को कभी विस्मृत न होने दें। जिस उत्साह, श्रद्धा और लगन के साथ आप इन कथाओं का पठन या श्रवण करेंगे, श्री साईबाबा वैसे ही सेवा करने की बुद्धि हमें प्रदान करेंगे। लेखक और पाठक इस कार्य में परस्पर सहयोग देकर सुखी होवें।

प्रसाद-याचना

अन्त में हम इस पुस्तक को समाप्त करते हुए सर्वशक्तिमान परमात्मा से निम्नलिखित कृपा या प्रसादयाचना करते हैं–

"हे ईश्वर! पाठकों और भक्तों को श्री साई-चरणों में पूर्ण और अनन्य भक्ति दो। श्री साई का मनोहर स्वरूप ही उनकी आँखों में सदा बसा रहे और वे समस्त प्राणियों में देवाधिदेव साई भगवान् का ही दर्शन करें। एवमस्तु।"

॥ श्री सद्गुरु साईनाथार्पणमस्तु। शुभं भवतु ॥

सप्ताह पारायणः सप्तम विश्राम

॥ ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः ॥

समाप्त

आरती

आरती साई बाबा। सौख्यदातार जीवां। चरणरजतलीं। द्यावा दासा विसावां, भक्तां विसावा। आरती ०॥ जाळुनिया अनंग। स्वस्वरूपीं राहे दंग मुमुक्षु जनां दावी। निज डोळा श्रीरंग, डोळा श्रीरंग। आरती १। जया मनीं जैसा भाव। तया तैसा अनुभव। दाविसी दयाघना। ऐसी तुझी ही माव, तुझी ही माव। आरती ०॥ २॥ तुमचे नाम घ्यातां। हरे संसृति व्यथा। अगाध तव करणीं। मार्ग दाविसी अनाथा, दाविसी अनाथा। आरती ०॥ ३॥ कलियुगीं अवतार। सगुण ब्रह्म साचार। अवतीर्ण झालासी। स्वामी दत्त दिगंबर। दत्त दिगंबर। आरती ०॥ ४॥ आठा दिवसां गुरुवारीं। भक्त करीति वारी। प्रभुपद पहावया। भव भय निवारी। भय निवारी। आरती ०॥ ५॥ माझा निज द्रव्य ठेवा। तव चरणरज सेवा। मागणें हेचि आतां। तुम्हां देवाधिदेवा, देवाधिदेवा। आरती ०॥ ६॥ इच्छित दीन चातक। निर्मल तोय निजसुख। पाजावें माधवा या। सांभाळ आपुली भाक, आपुली भाक। आरती साई बाबा। सौख्य दातार जीवा ०॥ ७॥

भावार्थ

हे जीवों को सुख देने वाले साई बाबा! हम तुम्हारी आरती करते हैं। अपने दास और भक्तों को अपने चरणों की शीतल छाया में स्थान दो। प्रदीप्त भावसे तुम सदा आत्मलीन रहते हो और मुमुक्ष जनों को ईश्वर की प्राप्ति करा देते हो। जैसा जिसका भाव होता है, उसे तुम वैसा ही अनुभव करा देते हो। हे दयालु! तुम्हारा कुछ ऐसा ही वैशिष्ट्य है। तुम्हारे श्रीचरणों का ध्यानमात्र करने से भक्त इस संसार के भय से मुक्त हो जाता है। तुम सदैव दीन और अनाथों की रक्षा करते रहे हो। तुम्हारी कार्यशैली अपरंपार है। हे दत्त! इस कलियुग में तुम सगुण ब्रह्म के रूप में अवतीर्ण हुए हो। इसीलिए जो भक्त नित्य गुरुवार को तुम्हारे पास आवें, उन्हें सांसारिक भय से मुक्त करके भगवद्-दर्शन योग्य बनाओ। हे देवाधिदेव! तुम्हारे चरणकमल ही मेरी सम्पत्ति हैं। जिस प्रकार मेघ स्वाति नक्षत्र की बूँद से चातक पक्षी की प्यास बुझा देता है, उसी प्रकार माधव (यहाँ अपना नाम लगायें) की भी प्यास बुझाकर अपने वचनों का पालन करो।

ॐ श्री साई यशःकाय शिरडीवासिने नमः॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः